लोकगीतों में स्त्री

– चंद्रकला भंडारी

स्त्री जीवन से संबंधित भावनाएं तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था में जकड़ी हुई स्त्री का रुदन कई–कई रूपों और तेवरों में लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्त हुआ है। लोकगीतों में स्त्री की अपनी भावनाएं, परंपराओं के प्रति क्षोभ, पितृसत्तात्मक जकड़न की बैचेनी, अपने निजी जीवन के सुख–दुख, आशा, इच्छाएं, वेदना, मिलन की जीवंत अभिव्यक्तियां दिखाई देती हैं।

फोटो– विनोद

लोक साहित्य के अध्येता राजेन्द्र धस्माना ने एक जगह लिखा है कि ''साहित्य की असली जड़ें लोक में हैं और लोक स्त्री की उपस्थिति के बिना संपूर्ण नहीं है। इसलिए साहित्य में स्त्री ढूंढने वालों को भी लोक साहित्य में स्त्री को पहले देखना चाहिए।''

यह सच्चाई है कि किसी भी समाज के मानवीय रिश्ते, स्त्रियों के रगो–रेशे में धड़कते हैं। उनकी संवेदनशीलता, पोषणकारी स्वभाव और दूसरों के सुख–दुख के प्रति संवेदना के कारण उनकी सांस्कृतिक चेतना अधिक सबल होती है। उनमें स्वभावतः परिवेश व प्रकृति से जुड़ने तथा लोकमंगल का भाव होता है। इसलिए सांस्कृतिक विरासत को वे जल्दी आत्मसात करती हैं। इसलिए लोककथाओं, पहेलियों, मुहावरों और तमाम मौखिक साहित्यिक रूपों के साथ लोकगीतों को बचाए रखने में भी उनका महत्वपूर्ण योगदान है। वे इन गीतों की विषयवस्तु भी होती हैं और रचयिता, गायिका भी।

जब लिपि का अविष्कार नहीं हुआ था तब भी भारतीय समाज में स्त्रियों के बीच लोकगीत गाये जाते थे जो पीढ़ी दर पीढ़ी बेटी मां से या बहू सास से सुनकर याद कर लेती थी। राहुल सांकृत्यायन के अनुसार ''भारत में यह वाचिक परंपरा हजारों वर्षों तक चलती रही है और आज भी ग्रामीण क्षेत्रों, महानगरों के पिछड़े इलाकों में इस परंपरा के लोकगीतों को किसी विशेष अवसरों पर ढोलक की थाप पर सुना जा सकता है।''

लोकगीत पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों के जीवन के अधिक करीब होते हैं। स्त्रियां अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिए गीतों का सहारा लेती हैं। सीधे–साधे हृदय को स्पर्श करते हुए भावों को व्यक्त कर पाना गीतों में ही संभव दिखता है। बालक से प्रथम क्रन्दन से लेकर जीवन के अंतिम पड़ाव तक के भाव चित्र इनमें होते हैं। धान कूटते समय, चक्की (जातरा) में गेंहूं पीसते समय, जंगल में घास काटते समय, बाल्यावस्था में विवाह बंधन में बंध जाना, खेत में काम करने की थकान, पति से विरह और प्रेम, भाई से मिलने की व्याकुलता, गरीबी और अभाव स्त्रियों को केन्द्र बनाकर रचे गए लोकगीतों की विषयवस्तु है। स्त्री जीवन से संबंधित भावनाएं तथा पितृसत्तात्मक व्यवस्था में जकड़ी हुई स्त्री का रुदन कई–कई रूपों और तेवरों में लोकगीतों में अभिव्यक्त हुआ है। (बशर्ते इन गीतों को

समझने वाली हमारी अंतर्दृष्टि हो)। लोकगीतों में स्त्रियों के वे दुःख दर्ज हैं जो कभी सवाल बनकर नहीं उभर पाए। वे स्त्री का शिकायतनामा हैं। वेदनाओं के साथ स्त्री–स्वाभिमान की झलक भी लोकगीतों में दिखती है। स्त्रियों का जीवन कब कैसा रहा यह उस समय के गीत बयां करते हैं।

उत्तराखण्ड की सांस्कृतिक विरासत काफी समृद्ध है। महिलाओं ने अपनी अभिव्यक्तियों को विभिन्न तरीकों से जनमानस के बीच रखा है। गढ़वाल क्षेत्र में गाए जाने झुमैलो गीत प्रेम और वेदना के प्रतीक है इन गीतों में स्त्री के हृदय की वेदना और साथ उसके रूप सौन्दर्य का वर्णन भी मिलता है। मकर संक्रान्ति पर कुमाऊं गढ़वाल में बसंत के आगमन पर किशोरियां फ्यूलीं को एकत्रित कर घर–घर जाकर देहली पूजती हैं और बसंत पंचमी के दिन देहलियों और द्वारों पर चावलों के आटे से रंगोली बनाती और गोबर से हरे जौ की गुच्छियां बनाकर देहली पर लगाती हैं। ये वसंती गीत हैं। बाजूबंद नृत्य गीत–रवाई जौनपुर क्षेत्र में गाये जाने वाला प्रेम–नृत्य गीत है। यह जंगल में बांज, बुरांश, काफल, चीड़, देवदार के पेड़ों के नीचे बैठकर गाया जाता है। बचपन में बेटियों का विवाह हो जाने पर ससुराल की जिम्मेदारियों को निभाते हुए स्त्री अपनी व्यथा खुदेड़ गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करती है। स्त्री सौंदर्य के वर्णन के साथ ही चारों प्रकार की कामनाओं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की अपेक्षा करना चौफला गीतों में दिखाई देता है। वर्षा ऋतु में अधिक वर्षा एवं प्रिय मिलन की आस को चौमासा गीतों में गाया जाता है। बारहमासा में 12 महीनों के लक्षणों, पर्व, त्योहार का वर्णन मिलता है। विवाह या किसी उत्सव में स्त्री–पुरूष गोलाकार बैठकर प्रश्नोत्तर के रूप में छपेली या छोपति गीत गाते हैं। यह गीत गढ़वाल के जौनसार क्षेत्र और कुमाऊं में अधिक प्रचलित है। सामूहिक नृत्य के माध्यम से माघ के महीने में झोड़ा तथा चांचरी गीत गाये जाते हैं। स्त्री पुरूषों के श्रृंगारिक नृत्य वाले इस गीत को बीच में हुड़की बजाते हुए गाते हैं। स्त्री–प्रेम की मधुर कल्पना पर मेलों में हुड़की एवं नगाड़े की धुन पर भगनौल गीत गाए जाते हैं। न्यौली विरह वेदना को अभिव्यक्त करने वाला गीत है।

स्त्री का जीवन से मृत्यु तक अपना घर नहीं होता है। बचपन में पिता, किशोरावस्था में भाइयों, युवावस्था में पति और बुढ़ापे में बच्चों के अधीन रहना भौतिक–आर्थिक और भावनात्मक परावलंबन स्त्री के जीवन का केन्द्रीय सत्य रहा है। विवाह के बाद स्वजनों को छोड़ बेटी जिस घर में जाएगी वही उसका अपना घर होगा। तमाम लोकगीतों के साथ कुमाऊंनी–गढ़वाली गीतों में भी इस दर्द को महसूस किया जा सकता है।

एक बेटी पिता से एक कठोर मेहनत वाले इलाके में खुद को न ब्याहने का अनुरोध इस कुमाऊंनी गीत में करती है। **'झन दिया बौज्यू छाना बिलोरी, लागिला बिलोरी का घामा''** (हे पिता मुझे छाना–बिलोरी के इलाके में मत ब्याहना, वहां खेतों में काम करते हुए बहुत तेज धूप लगती है) एक पढ़ी–लिखी बेटी पिता से ऐसे इलाके में ब्याहने की शिकायत इस गीत में कर रही है जहां झंगोरा (मोटा पहाड़ी अनाज) कूटना पड़ता है।

कै हुणी मैकें बाबू लै स्कूला पढ़ायो/पढ़ायो-लिखायो पहाड़ा बिवायो/मैं किलै बिवायो बौज्यू झुंगरा को देश/ कैकु बाबाजीन मिडिल पढ़ायो, कैकु बाबाजीन राठ बिवायो/बाबाजीन दैनी सैंडल-बूट, भागन बोली झंगोरा कूट/जो बैण्योंन साड़ी रौल्यों क पाणी, वै बैणि ह्वैगे राजों क राणी, (हे पिता मुझे मिडिल तक पढ़ा–लिखाकर भी झंगोरा कूटने वाले इलाके राठ में क्यों ब्याहा, कहां तो पिता ने सेंडिल–बूट पहनाए थे, पर मेरा भाग्य मुझसे झंगोरा कूटने को कहता है। जिन बहिनों ने गदेरों से पानी ढोया था वे राजाओं की रानियां बनी हुई हैं) भिटौली गीतों में बेटी को मायके से आने वाली भेंट का इंतजार रहता है। लोक गायिका कबूतरी देवी के गाए–एक गीत की लाइन इस तरह है–

''वर्ष दिन को पहिलो मैना, मेरी इजू भिटौली द्या जाना।''

ऋतु रैण गीतों में ऐसी बहिन की व्यथा है जिसका भाई वर्षों बाद उससे मिलने ससुराल आता है। (आना राजो बड़ा रे महिना, अना राजो उरे–कबूतरी देवी)।

विभिन्न उत्तराखण्डी गीतों में स्त्री अलग–अलग रूपों में मौजूद है।

जैसे–

ये पति बाज्यू बूढो...(हे पिता यह पति बूढ़ा है) या किसी गीत का यह जोड़–

पानी पियो गिलास लै, दै खायो बेली लै

तड़ातड़ आंसू ऊंनी बौज्यू की देहली में

(इसमें विवाहित स्त्री को अपने पिता के खाते–पीते घर की याद आ रही है)

अनेक लोकगीतों में 'त्वीलै धारौ बौल' पद का इस्तेमाल किया जाता है। खास कर झोड़ों में यों तो यह पद जिस नायक या नायिका ने कोई साहस वाला काम किया उसकी सराहना के रूप में प्रयोग होता है। इसके पीछे यह किस्सा भी कहा जाता है कि तिलो नाम की महिला ने उसके अपहरणकर्ता को एक ऊंची चोटी (धार) से धकेलकर स्वयं को मुक्त कराया था। तब से यह पद साहस और वीरता की प्रशंसा में 'तूने लाज रख ली' के अर्थ में उपयोग होते हैं। युवक–युवती का प्रेम करना सामंती समाज में वर्जित था लेकिन इसे तोड़कर चौकोट की पार्वती और मासी के प्रताप ने एक दूसरे से प्रेम किया तो वे झोड़े (थड़या गीत) का हिस्सा का बन गए। ''चौकोटै की पारवती, त्वीलै धारौ बौला बली त्वीलै धारौ बौला, मासी कौ प्रताप लौंड़ा त्वीलै धारौ बौला बली, त्वीलै धारौ बौला, झोड़ा–गीतों की एक खूबी यह है कि इसमें पहली दो पंक्तियों के बाद नए–नए सामाजिक मुद्दे जुड़ते जाते हैं–

कुमाऊंनी कवि हीरासिंह राणा ने – खेत में काम कर रही पहाड़ी स्त्री के श्रम सौन्दर्य प्रेम के बिम्ब को इस गीत में सुन्दरता के साथ उकेरा है–

रंगिलि बिन्दि, घाघरि काई, धोती लाल किनार गाई
आय हाय रे मिजाता, हाय हाय रे मिजाता
एक हाथ दातुली छौ, एक हाथ ऐना
नौपाटै घाघरी परा रेशमियां चैना

(ओ स्त्री तेरे माथे पर रंगीन बिन्दी सजी है, तूने काला घाघरा और लाल किनारे वाली धोती पहन रखी है। अरे तेरी छवि कितनी लुभावनी है। तूने एक हाथ में घास काटने के लिए दंराती संभाल रखी है। दूसरे हाथ में आईना ले रखा है जिसमें रेशमी चेन वाला घाघरा पहने अपनी छवि को तू बार–बार निहार लेती है। हाय रे तेरी यह धज)

पारा डांडा घुघती बासी, मेरो मन उदासी लागी
कै पापी सुआ की नराई लागी,

(पार की पहाड़ी पर घुघुती बोली, तो मेरा मन उदास हो गया। लगता है मुझे किसी प्रिय स्वजन की याद आ गई है)

फोटो– विनोद

गढ़वाली के लोकगायक और गीतकार नरेन्द्र सिंह नेगी ने स्त्री के अपने मायके के प्रति लगाव, ससुराल के अभाव और प्रिय के प्रति विरह को इन पंक्तियों में व्यक्त किया है–

हे मेरी दगड्या घसेरी भग्यान
रैबार ली जान, हाथ जोड्यान

(ओ मेरी साथिन भाग्यवान घसियारी, मैं तेरे हाथ जोड़ती हूं तू मेरा संदेश मेरे मायके ले जा)

घर में यदि अभाव हो तो सबसे ज्यादा स्त्री को ही सालता है।

दुकानी कू नफा दूकानी कू नफा/
लाण कू थेकली नींच खाण कू गफा

(यहां स्त्री घर के अभाव का जिक्र करती हुई कहती है कि घर में पहनने के लिए न कपड़ा है और न खाने के लिए एक कौर रोटी)

झंगोरा की बाल– झंगोरा की बाल
तेरो बाट हेरि छोरि आंखि ह्वैगे लाल

(प्रेयसी/पत्नी पति विरह को व्यक्त करते हुए कहती है उधर झंगोरे में बाली आ गई है। इधर तेरा रास्ता निहारते–निहारते मेरी आंखें रोते–रोते लाल हुई जा रही है)।

जनकवि गिरीश तिवारी 'गिर्दा' ने पहाड़ में घर गृहस्थी की जद्दोजहद में लगी स्त्री और उसके परिवार बच्चों के प्रति प्यार के लिए एक खूबसूरत रूपक बुना है–

मुश्किल से आमा का चूल्हा जला है/गीली है लकड़ी का गीला धुआं है/साग क्या छौंका कि गौं महका है/ओ होरे ओ दिगो लाली

(चूंकि चौमास में बटोरी गई लकड़ियां गीली है। इसलिए चूल्हे में उन्हें जलाने में खासी मशक्कत हो रही है।

लकड़ियां धुआं दे रही हैं। लेकिन जब वे जल उठीं तो अम्मा ने साग छौंका और छौंक की महक से गांव भर उठा)

थन लगी बाछि की गै पगुरी है/दु द्वां द्वी द्वां दुधि धार छुटी है/दुहने वाली का हिया भरा है/ओ हो रे मन धौ धिनालीं

(बछिया गाय की थनों से लगी है– गाय के थनों में दूध भर आया है। जब अम्मा–दूध दुहने लगती है, द्वी द्वां की आवाज करते हुए दूध की धार बर्तन में गिरती है और इसी के साथ गृहस्थ न जो स्वयं भी मां है का हृदय भर आता है) जौनसारी गीत की यह पंक्तियां एक किशोरी की खोई हुई अस्मिता बयां करती है। **(आयी ना कदी भी चिठ्ठी मैंरे नांव की, कशी जिंदगी मेरी खैंड़े गांव की)** उसकी आस है कि काश मेरे नाम से भी कोई चिठ्ठी आती।

लोक के साथ एक सच्चाई यह भी है कि स्त्री के जीवन में भोगी जाने वाली पीड़ा का जनक भी यही लोक है। लोकगीतों में ऐसे मूल्य मान्यताएं भी हैं– जो स्त्रियों को पिछड़ी दृष्टि से देखती हैं। यदि स्कूलों में लोकगीतों को शैक्षिक महत्व मिलता है तो हमें उनके चयन में सावधानी बरतनी होगी। लेकिन लोकगीतों की उपेक्षा तो हमें समाज में विरासत से चली आई– सैंकड़ों, हजारों सांगीतिक धुनों और भाषाई संरचनाओं से वंचित ही कर देगी।

आज से करीब तीन दशक पहले स्कूलों की सभाओं और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में लोकगीत/किस्से पहेलियां आदि कहे जाते थे। स्कूल इन्हें प्रोत्साहित करते थे। पर अब इसमें काफी कमी आ गई है। बढ़ते शहरीकरण के चलते भाषा और साहित्य के लोकरूपों का ह्रास हुआ है। जरूरत इन्हें पुनर्जीवित करने की है।

छोटी कक्षाओं में इन्हें गाने, कहने का आनंद लिया जा सकता है। बड़ी कक्षाओं में तो ये अपने समय के सामाजिक जीवन को जानने का जरिया भी बन सकते हैं। इस तरह इनसे इतिहास का कोई पाठ भी पढ़ाया जा सकता है। ये बच्चों की भाषाई समझ, उनके गाने के कौशल और शब्दकोष में तो वृद्वि करेंगे ही। खासकर स्कूलों में स्त्रियों की भावनाओं से संबंधित लोकगीतों का उपयोग बच्चों को नारी जाति के प्रति संवेदनशील बनाएगा।

(लेखिका अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, देहरादून से जुड़ी हैं)

मातृभाषा

– इब्बार रब्बी

क्या है मातृभाषा ?
पूछा गया गूंगे लड़के से
क्या बताए वह!
लड़का जानता है मां को
भाषा को नहीं जानता
रोमन और नागरी नहीं पहचानता
पूछता है लड़का –
'मां, क्या है मातृभाषा ?'
समझा नहीं पाती मां
सिर खुजाता है लड़का
फिर लिखता है अंग्रेजी में –
'मैडम मुझे नहीं मालूम
माता-पिता की भाषा'

(कबाड़खाना ब्लॉग से साभार)

बोली की परत

"मानव व्यक्तित्व में दो परतें होती हैं। ऊपर वाली बाह्य घावों के समान होती है. इसमें इतालवी, फ्रेंच और लैटिन (मानक कही जाने वाली भाषाओं) के शब्द होते हैं। इसके नीचे वाली परत आतंरिक– ऐसे घावों के समान होती है जो भरने पर अपने निशान छोड़ जाते हैं: ये हैं बोलियों के शब्द। जब हम इन निशानों को छूते हैं तो एक दृश्यमान श्रृंखलात्मक प्रतिक्रिया प्रारंभ होती है। इसे उन लोगों को समझाना बहुत मुश्किल है जिनकी कोई बोली नहीं होती। यह एक समझे हुए तथ्य का कभी भी नष्ट न होने वाला केन्द्र है। यह इन्द्रियों के तंतुओं से जुड़ा होता है। बोली का शब्द हमेशा यथार्थ पर टिका होता है। क्योंकि ये दोनों एक ही होते हैं। इन्हें हम कारण देने से पहले ही पहचान लेते हैं। ये कभी भी गायब नहीं होते चाहे हमें दूसरी भाषा में भी कारण या तर्क देना क्यों न सिखा दिया जाय।"

– **लुइगी मेंग्लो** (इतालवी विद्वान् और लेखक)

भाषा को सींचती लोककथाएं

–मनोहर चमोली 'मनु'

लोक कथाएं दुनिया भर में मशहूर हैं। भारत में लोक कथाएं बेहद समृद्ध हैं। ये कथाएं अपने समय का प्रतिनिधित्व करती हैं। साथ ही इन्हें सुनते–पढ़ते समय श्रोता और पाठक तत्कालीन परिवेश, समाज, लोकजीवन और आचार–व्यवहार की पड़ताल सहजता से कर लेते हैं। लोक कथाओं में इतनी विविधता है कि श्रोताओं और पाठकों को उनकी रुचियों के अनुसार किस्से सुनाए जा सकते हैं। देशकाल के आधार पर लोक जीवन के इर्द–गिर्द बुनी इन कथाओं में सुनना और सुनकर बोलना कौशल ने इन कथाओं को बार–बार संशोधित किया। यही कारण है कि एक ही कथा सौ कदम चलकर दूसरे रूप में सुनाई देती है। रोचक बात यह भी है कि एक ही कथा को जब बार–बार नए–नए रूपों में सुना और पढ़ा जाता है तब भाषाई कौशलों की ताकत का पता चलता है।

लोक कथाएं ही हैं जिनके सहारे हम बच्चों में पढ़ने की आदत विकसित करने के साथ सुनना और बोलना भाषाई दक्षताओं का विकास कर सकते हैं। लोक कथाओं का स्कूल से जुड़ाव हो तो ये संवेदनशीलता के साथ–साथ समाज निर्माण में छात्रों की भूमिका को सकारात्मक ढंग से गुणित अनुपात में बढ़ा पाती हैं। लोक कथाओं के बेहतर उपयोग को संक्षेप में इस तरह से जाना जा सकता है।

कक्षा में लोक कथाओं का उपयोग

लोक कथाओं का उपयोग कई तरीकों से हो सकता है। पहले तो हम लोक कथाओं को सुनाएं। एक बार में एक लोक कथा सुनाना अधिक कारगर होता है। लोक कथा को सुनाने के बाद सुनने का कौशल बढ़ाना खास काम हो सकता है। इसके लिए हम बच्चों से स्वतंत्र रूप से कह सकते हैं कि कौन–कौन इस कथा को अब सुनाना चाहेंगे। आरंभ में हौसला बढ़ाना हमारा काम हो सकता है। बच्चे जैसा भी हो सके सुनाएंगे। हम किसी भी तरीके को हतोत्साहित नहीं करेंगे।

एक तरीका और हो सकता है। कथा सुनाने के बाद हम बच्चों से एक–एक वाक्य बुलवाकर सुनाई गई लोक कथा को फिर से पूरा करने का अभ्यास करा सकते हैं। इस विधि में हम पूरे क्रम को चलने देंगे। संभव है कि एक–एक वाक्य जोड़ते हुए कथा का कोई खास हिस्सा छूट सकता है। यह भी संभव है कि नए पात्र और नई बातें कथा में शामिल हो सकती हैं। बाद में हम कह सकते हैं कि लोक कथा देशकाल और परिस्थिति के हिसाब से ऐसे ही आगे बढ़ती है और अलग–अलग जगहों पर अलग–अलग तरीकों से सुनी और सुनाई जाती है। एक तरीका है लोक कथाओं को पढ़कर सुनाना। पढ़कर सुनाने के भी कई तरीके हो सकते हैं। हम किसी एक लोक कथा की कई प्रतियां बांट कर उसे पात्रों या अनुच्छेद के हिसाब से सभी की सहभागिता तय कर सकते हैं। एक तरीका और हो सकता है हम कुछ बच्चों को किसी लोककथा के पात्रों के हिसाब से हाव–भाव और अभिनय के साथ कक्षा–कक्ष में प्रस्तुत कर सकते हैं। 'तिल पूरे हैं' लोक कथा है। इस कथा के आधार पर हम छात्रों को घन्ना, तिमली, खेलने वाले बच्चे और घुघती के पात्र तय कर सकते हैं। यह एक रोचक, आनंनदायी और रचनात्मक गतिविधि बन जाती है।